नमक के ढेलों की अधिकता से बिगड़ता जा रहा है साहित्य का स्वाद : पुष्पिता अवस्थी

डॉ॰ अनुपमा तिवारी
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर, हिन्दी
अलायंस विश्वविद्यालय, बंगलोर
फोन – 8886995593/8142623426
ईमेल – anutosh.tiwari82@gmail.com

(पुष्पिता अवस्थी की साहित्यिक सेवाओं और कार्य निष्ठा के लिए उनका नाम भारत से यूरोप तक चर्चित है। कवि, लेखिका, अध्यापक, संपादक, संस्कृतिकर्मी व भाषाविद के रूप में आपने अपनी सेवाएँ दी हैं। सूरीनाम में भारतीय राजदूत के पद पर कार्यरत आपने वहाँ तथा भारत की संस्कृति का समन्वय करके साहित्य सृजन किया है। समाज सुधार का दृष्टिकोण आपकी लेखनी का वैशिष्ट्य है। प्रस्तुत है लेखिका के साथ बातचीत के कुछ अंश -)

अनुपमा तिवारी : वर्तमान समय में कई धाराओं पर लेखन कार्य चल रहा है यथा – दलित साहित्य, स्त्री विमर्श, किन्नर विमर्श, प्रवासी विमर्श, वृद्ध विमर्श, पर्यावरण आदि। एक साहित्यकार के रूप में आप इस जाति, लिंग व क्षेत्र निर्धारित नामकरण को कितना सार्थक मानती हैं ?

पुष्पिता अवस्थी : - सवाल बहुत प्रासंगिक और समय सन्दर्भित है। एक तरफ से कहा जाए कि हमारे देश की राजनीति जैसे – जैसे करवटें लेती है , उसका प्रभाव साहित्य पर भी पडता है। जिस तरह जाति को लेकर आरक्षण हुए और स्त्री को लेकर आरक्षण हुए , उसी तरह साहित्य के क्षेत्र में भी आरक्षण या विमर्श में यह प्रभाव दिखाई देने लगा। शुरु में यह नहीं था। आज से चालीस वर्ष पहले इस तरह से स्थितियां नहीं थीं अर्थात इतनी विकट नहीं थीं। मेरा अपना मानना यह है कि क्योकि मैं लेखक भी हूं कि एक गम्भीर लेखक लिखते समय अपने समाज के प्रति बहुत सचेत और जागरूक हो कर लिखता है। कि समाज में जो बुराइयां हैं और बुराइयों के रूप में जो रोग हैं – जोंक की तरह , दीमक की तरह। जिस प्रकार ये वस्तु में लगकर उसे कमजोर करते हैं उसी तरह से व्यवस्था में कौन सी ऐसी शक्तियां या बुरे अलिमेंट्स आ जाते हैं जि कि नष्ट करने लगते हैं – परिवार , समाज, स्त्री , बच्चों और पूरी व्यवस्था को और राजनीति को। तो एक लेखक गम्भीर रूप से इस पर विचार करते हुए लिखता है , वो इस पर विचार नहीं करता है (गम्भीर लेखक की बात कर रही हूं मैं) क्योंकि आज कल का समय ऐसा है , कि बहुत से ऐसे लोग जिनके पास लेखन का कौशल है , वे चर्चित होने के लिए , प्रसिद्ध होने के लिए ऐसे उपन्यास लिखते हैं जिससे वे चर्चा में आ जाएं , कुछ लोग पुरस्कार पाने के लिए लिखते उस दृष्टि से लेखन कार्य करते हैं। यह भी लेखकीय समाज का एक रोग है। लेखकीय समाज में भी वर्ग करने की जरूरत है कि वास्तविक लेखन क्या है और कौन सा लेखन है जो उद्देश्य पूर्वक लिखा जा रहा है। स्त्री विमर्श का जो लेखन है उसमे बहुत सी ऐसी लेखिकाएं और लेखक हैं जो स्त्री के उन मुद्दों को उठाते हैं और इस तरह से लिखने की कोशिश करते हैं कि सच्चाई जितनी दारुण ना भी हो , लेखन वह इतनी भीषण दिखाई दे जिससे लोगों को लगे कि वह बहुत अच्छा लेखक है। मैं सिर्फ सन्दर्भ का उल्लेख कर रही हूं लेखिकाओं के ना बोलने पर नहीं और जो प्रबुद्ध समाज है लेखकों का और पाठकों का वो नाम खुद समझ जाएगा। इसमें कोई असुविधा नहीं होगी। इस प्रकार का लेखन आत्म प्रसिद्धि के लिए लिखा जा रहा है , सम्मान पाने की दृष्टि से लिखा जा रहा है , वो समाज के चिंता के लिए नही लिखा जा रहा है। समाज के चिंता के लिए लिखा जाने वाले साहुत्य में इस तरह के वर्ग भेद काम नहीं करते हैन। क्योकि समाज इन सबसे मिलकर बना है। समाज में दलित हैं , स्त्री हैं , किन्नर हैं , प्रवासी हैं , वृद्ध लोग है। इन सबसे मिलके बना हुआ है समाज जिसमें लेखन होता है। एक गम्भीर लेखक किस तरह से गूंथता है अपनी समाज की घतनाओं को कि उसमे पर्यावरण की भी चिंता दिखाई , एक स्त्री के संघर्श की भी चिंता दिखाई दे , किन्नर भी कहां कहं स्थान पा रहे है। लेकिन अगर एक शोध की तरह लिखा जाए कि किन्नरों के उपर य दलितो के उपर लिखा गया उपन्यास

है तो यह सवाल उठता है न्कि समाज से इन्हें विलग करके इनके बारे में लिखा जा रहा है ? जब्कि पूरे समाज मे लोग होते हैं और पूरे समाज को लेकर ही लिखा जाना चाहिए। इस प्रकार यदि लेख लिखा जा रहा है तो वह सोद्देश्यपूर्ण है और उनका उद्देश्य एकदम स्पष्त है जो लेखक के अपने उससे जुडा हुआ है। वास्तविक लेखन में पूरी चिंता के साथ , सर्वाधिक प्रभावित आज समाज को राजनीति ने कर रखा है। ओ चाहे महदूर हों , या शिक्षक हों चाहे चिकित्सक हों। अभी कोरोना के दौरान जो भांति भांति के ऐलान सरकार की तरफ से रुपए भी लोगों को बांटे जा रहे हैं अनाज भी दिया जा रहा है , तो इनसे क्या अपको नहीं लगता कि भावी चुनाव की राजनीति भी काम कर रही है ? समाज के बीच में सम्स्याओं के समाधान के लिए ? यह हमेशा होता रहा है। राजनीति इस देश कोम प्रभावित कर रही है एक निचे तमके के आदमी से लेकर बडे तपकों तक लेकिन इस तरह के लेखन मे राजनीति को लेकर नही लिखा गया और आपने। मुझे ऐसा लगता है किजब एक गम्भीर लेखक लिखता है , जैसा कि प्रेम्चन्द जी ने लिखा , अमृतराय जी ने लिखा , अमृतलाल नागर ने लिखा। ये सब किसी विचारधारा के नहीं बल्कि भारत के समाज और संस्कृति में क्या है उस पक्ष पर लिखा । और आप देखिए कि इन लेखकों की परम्परा में प्रेमचन्द के बाद अमृत् राय , अमृत लाल नागर और इस प्रकार के लेखकों को एक्दम किनरे करके कम्युनिस्ट विचारधारा चली , प्रगतिशील विचारधारा और इसके तहत साहित्य का आकलन होता रहा। लेकिन जब ये प्रगतिशील और प्रयोगवाद ये सब खत्म हुए तब से ये विमर्शों का सिलसिला आरम्भ हुआ और साहित्य में छा गया। इन्हें स्थापित करने में आलोचकों ने , सम्पादकों ने , विश्वविद्यालय के आचार्यों ने बहुत योगदान दिया। विश्वविद्यालय के जो विद्वान प्रोफेसर होते हैं जिनका स्वयं का अध्ययन कम होता जा रहा है आजकल और वे शोधार्थियों को जो विषय देते हैं ये एक सीमित अध्ययन करते हैं और उन्हीं के द्वारा यह विमर्शों का भण्डार व्यापक होता जा रहा है। बाद में उसी शोध कार्य की पुस्तकें जब यह कहकर प्रकाशित की जाती हैं कि भावी लोगों के लिए सामग्री चयन हेतु सुगम होगा तो उसका विस्तार निर्बाध गति से करते जा रहे हैं और आलोचक के प्रतिमान भी काफी हद तक बदल चुके हैं जो ऐसी किताबों के प्रति बाहबाही का ऐसा पुल बान्ध देता है कि शोधार्थी लेखक बनने पर गर्व करने लगता है। दुसरी ओर पत्रिका के जो सम्पादक होते हैं उन्हें भी विशेषांक निकाल कर चर्चा में बने रहने का तथा धनोपार्जन का माध्यम भी चाहिए होता है अत: वे भी इस विमर्श प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने में भुमिका निभाते हैं। जिस प्रकार जब कोई चुनाव आता है तो प्रचारक इतना बढा-चढा के विशेषता बताते हैं कि उम्मीदवार चुनाव जीत जाए। ऐसा ही कुछ आजकल साहित्य में भी हो रहा है। आलोचकों व सम्पादकों के अपने खेमे बंटे हुए हैं। पुस्तक प्रकाशन में आने से पूर्व ही यह निर्धारित कर लिया जाता है कि हमें फलां व्यक्ति को साहित्यकार बनाना है और वे जिस प्रकार महिमामण्डन करने लगते हैं कि सामान्य पाठक आसानी से आलोचक के नाम से उसमें फंस जाता है। कहना यह चाहती हूं कि आज साहित्य का आकलन सामाजिकता के समूचे परिवेश से नहीं जोडा जा रहा अपितु टुकडे – टुकडे में वर्गीकृत कर दिया गया है।

अनुपमा तिवारी : आज साहित्य की पठनीयता पर एक संकट सा दिखता है। इसके कई कारणों में से एक यह भी है कि – सम्प्रेषण और साहित्यिक भाषा की चुनौती। प्रवासी साहित्यकारों के समक्ष यह चुनौती कितनी और किस प्रकार की है ?

पुष्पिता अवस्थी : – आज पठनीयता का संकट बहुत बडा है। ये इतना विशाल और विकराल हो गया है। पहले जब आप ट्रेन में ट्रैवल करती थीं तो आप लोगों को उपन्यास पढते हुए देखती होंगी , कुछ कहानी संग्रह लेते हैं कुछ पत्रिकाएं रखते हैं और पढते हैं। लेकिन अब आपको ट्रेन या फ्लाइट में अब सबके पास मोबाइल है , उसमें भी लोग पुरी लाइब्रेरी रखते हैं और कहीं भी ले जा सकते हैं। लेकिन आज फेस बुक और व्हाट्सअप ने इतनी जगह घेर ली है यद्यपि यह एक सुविधा भी है , लेकिन इसने भाषा को बहुत संकुचित किया है। पहले लोग जब पढते थे तो भाषा सीखते थे , चुंकि अब पढने का काम ही नहीं हो रहा है , इसलिए भाषा सीखने का भी नहीं हो रहा है। अब पढते क्या हैं ? या तो अखबारों में पढ रहे हैं। और आप देख ही रही हैं कि अखबारों की भाषा का कितना पतन हो गया है सबको दिखाई दे रहा है। आंग्रेजी से मिश्रित हिन्दी भाषा बना रहे हैं। या जो प्रादेशिक भाषाएं हैं उनमें भी अंग्रेजी भाषा उतनी ही मिली हुई है। अगर यह सम्मिश्रण नमक की तरह होता तो भी आत्मसात किया जा सकता था , लेकिन विडम्बना यह है कि इसे नमक के जो ढेले होते हैं न उस तरह प्रयोग किया जा रहा है। जैसे नमक के धेले को समुचित रूप में न डाला गया तो वह सब्जी या दाल में घुल कर उसका स्वाद बिगाड देता है , उसी प्रकार हिन्दी भाषा और प्रादेशिक भाषाओं में

जिस प्रकार अंग्रेजी का प्रयोग किया जा रहा है वह हिन्दी भाषा तथा प्रादेशिक भाषाओं की मधुरता को बेस्वाद करता जा रहा है। भाषाओं का अपना सौन्दर्य फीका पडता जा रहा है। इससे पठनीयता का संकट बढता जा रहा है। यह सामान्य पाठक की बात कर रहे हैं। पर समाज का प्रबुद्ध वर्ग भी आज पढने से बच रहा है। और जो कुछ ज्यादा प्रबुद्ध हैं वे शौकियावश अंग्रेजी नॉवल या कुछ किताबें पढ लेते हैं हिन्दी की ओर नहीं जाते हैं। अब आप यह भी देखिए कि भारतीय लेखक को वह सम्मान भी नहीं देते जो विदेशी लेखकों को मिलता है। यहां वह स्थिति नहीं है। वहां जब किताब लिखी जाती है , तो प्रकाशक के यहां एक सम्पादक मंडल होता है उनके द्वारा पुस्तक का चयन किया जाता है औए जब किताब पसन्द कर ली जाती है तब वह ऑर्डर लेता है। तो प्रकाशक की एक name value है , वह लेखक को पहले पैसे देता है और बाद में किताब छापता है और उसके संस्करण पे संस्करण छपते रहते हैं ।हमारे यहां स्थिति यह है कि लेखक खुद अपनी किताब छपवाता है और प्रकाशक को पैसे चाहिए। प्रकाशक पैसे लेकर किताब छापता है अत : लेखक जो भी लिखता है वह छपता है। आजकल तो पत्रिकाओं में लेख भी सम्पादक पैसे लेकर छाप रहे हैं। ये मैने उन लोगों की बात कही है जो शिक्षक और लेखक नहीं हैं। यह तो उनकी पठनीयता का संकट है। लेकिन आज आपसे मैं पूरे अनुभव के साथ (तीस वर्ष) कह रही हूं कि आज की तारीख में लेखक भी लेखक को नहीं पढ रहा है। विश्वविद्यालय के जो प्रोफेसर हैं उनमें भी बहुत कम बचे हैं जो गहन अध्ययन कर रहे हैं। हमारे समय में जब लेखक आता था शहर में तो हममें एक अजीब उत्साह और उत्सुकता होती कि हमारे प्रोफेसर हमें यह अवसर दें कि हम लेखक के स्वागतार्थ उपस्थित रहें। उस लेखक को हम निजी तौर पर जानें कि वह अपनी जिन्दगी में कैसा है ? उसका खान – पान , वेश – भूसा , व्यहार आदि। ऐसी निकटता मिले कि हम उनका वैशिष्ट्य जान सकें। ये उन लेखक की बात कर रही हूं , जैसे अज्ञेय , कमलेश्वर , केदारनाथ सिंह इन सारे लेखकों की मैं बात कर रही हूं। अशोक वाजपेयी जी खुद बताते थे जब अज्ञेय जी आते थे , तो लोगों में होड लगती थी कि उन्हें लेने हम जाएंगे। उनका झोला हम उठायेंगे। पर आजकल वह भाव लोगों में दिखता ही नहीं , कुछ पता ही नहीं चलता। अत: जो आपका पहला प्रश्न था वह इतना महत्वपूर्ण था , उसी के सन्दर्भ में यह कह सकते हैं है कि आज साहित्य में जो वर्गों के आधार पर या विभाजन के आधार पर साहित्य लिखा जाने लगा है , उससे साहित्य की पठनीयता कम हुयी है क्योंकि लोग समेकित रूप में नहीं बल्कि वर्ग में बंट कर साहित्य पढ रहे है। आप पठनीयता कम कह रही हैं मुझे तो लगता है कि खतम हो रही है। प्रवासी साहित्यकारों के सामने कुछ बडी चुनौती है , किंतु आजकल जो नए और अध्ययन शील पाठक या शोधार्थी वगैरह हैं वे विदेश को जानना चाहते हैं इसलिये प्रवासी साहित्य के प्रति उनकी एक जिज्ञासा है।

एक और बात स्पष्ट करना चाहती हूं कि ये प्रवासी शब्द ही बहुत विवादास्पद है और अस्पष्ट है। जो विदेश में रह रहे हैं वे अलग से , उनको भी प्रवासी कहा जा रहा है , और कोरोना की महामारि से जो मजदूर या कार्यकर्ता दूसरे प्रदेश से अपने घर् आ रहे हैं उनके लिए भी प्रवासी शब्द का प्रयोग हो रहा है। ये जो प्रवासी मजदूर हैं वे मजदूरी करने जाते हैं और वापस अपने गांव आ जाते हैं। साल मे एक या दो बार इनका आवाजाही लगा ही रहता है ।लेकिन विदेश में रहने वाला जो प्रवासी है वे दो दो तीन – तीन साल तक नहीं आते। दूसरी बात कि वे वहां स्थायी रूप से बसे हैं उस देश में , उनकी नागरिकता उस देश की है। लेकि नुसे भी प्रवासी कहा जाता है।

अनुपमा तिवारी : मैम , जिस आधार पर आप अपनी बात इस पक्ष पर रख रही हैं तो क्या इस प्रकार यदि उन्हें अप्रवासी शब्द से सम्बोधित किया जाए तो उचित होगा ?

पुष्पिता अवस्थी : देखिए प्रवासी शब्द उस समय चला जब ' चांद ' और ' मर्यादा ' पत्रिका के विशेषांक निकाले गए और उन्हें प्रवासी विशेषांक कहा गया ।जो पाल वाले जहाजों से चार – पांच महीने की समुद्री यात्राओं से गए और जाने के बाद वहां पर रह गए , कुछ लोग पांच वर्श के कॉट्रेक्ट पर गये और जब भारत आए तो उन्हे स्वीकार ही नही किया गया। आज प्रवासी साहित्यकार की स्थिति बहुत बेहतर है क्योंकि जो नई पीढी है , वो विदेश में बसना चाहती है। उन्हें करीब से जानना चाह्ती तो वे प्रवासी साहित्य के प्रति जो उत्कंठा दिखाते हैं उससे यह कहा जा सकता है कि प्रवासी साहित्य के पाठक अच्छी मात्रा में हैं।

अनुपमा तिवारी : छिन्नमूल उपन्यास में आपने दो संस्कृतियों के टकराहट और भटकती यूवा पीढ़ी को दिखाया है। यह व्यंग्य क्या सूरीनाम की सामाजिक व्यवस्था और युवाओं पर केन्द्रित है ? विषय वस्तु की प्रेरणा का स्रोत क्या है ?

पुष्पिता अवस्थी : छिन्नमूल उपन्यास मे उस समाज और संस्कृति के बारे मे गम्भीरता से लिखा गया और उसमे हिन्दुस्तानी कमेटी के साथ साथ दूसरी कमेटी के बारे में भी लिखा गया है। यह उपन्यास समग्रता मे लिखा गया है इसिलिए कमल किशोर गोयनका जी ने इसे " सूरीनाम का महाकाव्य " कहा है। सूरीनाम देश पर हिन्दी भाषा में या कहा जाए कि सूरीनाम देश पर डच भाषा को छोडकर किसी भी भाषा में यह पहला उपन्यास है। और जो डच भाषा मे उपन्यास लिखे भी गए हैं , उसमे हिन्दुस्तानी कम्यूनिटी पर लिखा ही नही गया है। बल्कि उस देश में रहने वाली दूसरी जातियों पर लिखा गया है। डच पर , निग्रो पर लिखा गया है क्योंकि लेखक के रूप में वहां वही दो जातियां हैं। इस आधार पर विश्व में वह भी किसी दूसरे देश में भारत कम्यूनिटी पर लिखा गया पहला उपन्यास है। अंग्रेजी में भी नहीं लिखा गया है। इसको लिखने में बहुत समय लगा। लगभग पन्द्रह वर्ष लगे लिखने में। इसकी सारी की सारी घटनाएं सत्य हैं। दूसरे देश की घटनाओं को लेकर लिखना इसलिए चुनौतीपूर्ण होता है (आप तो देखती हैं कि यदि अपने देश में भी कुछ गलत लिख दिया जाए या अप्रामाणिक लिख दिया जाए तो किस प्रकार आन्दोलन शुरु हो जाता है) हमने दूसरे देश की जो कमजोरियां हैं उसकी सच्चाइयों को लिखने के लिए मेरे पास दस्तावेज़ होने चाहिए , जिससे कि अगर कोइ प्रोटेस्ट करता है और ये उपन्यास बैन होता है तो हम उसकी लडाई लड सकते हैं। अभी चूंकि इसका डच भाषा में अनुवाद होना बाकी है , इस भाषा में अनुवाद होने से इसके कुछ उल्लेख ऐसे हैं कि इस पर बैन लगाने की बात की जाए , इसकी पूरी सम्भावना है। इसलिए मैनें इसके जितने अखबारी दस्तावेज़ हैं उसे सम्हाल के रखे हैं। ' छिन्नमूल ' उपन्यास में जितने भी ऐतिहासिक तथ्य दिये गए हैं वे बिल्कुल सत्य हैं। आज से पचास वर्ष बाद भी अगर उपन्यास को उन घटनाक्रम के आंकडों के साथ देखा जाए तो उसमें यथार्थ मिलेगा। उस समय के समाज के आधार पर एक वैज्ञानिक या मनोवैज्ञानिक या सांस्कृतिक विश्लेषण की दृष्टि से उसके साथ इमानदारी बरती जा सके।

अनुपमा तिवारी : आप सूरीनाम में हिन्दी और उसका भविष्य किस प्रकार देखती हैं ?

पुष्पिता अवस्थी : सूरीनाम में हिन्दी साहित्य का भविष्य बहुत अच्छा नहीं है। क्योंकि सूरीनाम के लोग जो भाषा बोलते हैं , वो " दालेक्ट " बोलते हैं। वही उनकी बोली है ,और यह वो बोली है जो हमारे उत्तर प्रदेश , बिहार , छत्तीस गढ , मध्यप्रदेश , हरियाणा और इन जगहों से जो लोग ले जाए गए , उन सबकी बोलियों से मिलकर जो बोली बनी , वहां जाने के बाद जो डच ,निग्रो आदि की भी शब्दावली उन्होने ले ली उन सबके सम्मिश्रण से मिलकर एक भाषा गढी गई जिसे सरनामी भाषा कहा गया। तो वह हिन्दी भाषा नही सरनामी भाषा है और वो सरनामी भाषा भारत की हिन्दी भाषा परिवार की बोलियों से मिलकर बनी है जिसमे विशेषण और संज्ञाएं अपनी हिन्दुस्तानी बोलियों से हैं। ये जो बोलियों की भाषा ये सरनामी भाशा वहां के लोग बोलते हैं वह हिन्दुस्तानी लोग आपस में बात – चीत के लिए इस्तेमाल करते हैं। उसमें साहित्य नहीं लिखा गया। और जो लिख गया वह बहुत ही बेसिक लिखा गया। जब मैं वहां गई तो देखा कि हिन्दी कार्य शून्य है। बस एक ही पत्रिका निकलती थी, बत्तीस पृष्ठों की , बडे – बदे अक्षर लिखे हुए। कोई साहित्य कोई पत्रिकाएं नहीं थीं। जब मैं उनके बीच गई तो लगा कि हिन्दुस्तानी किसान मजदूर हैं जरूर कुछ लिखते होंगे ,तब मैने लोगों के घरों केदरवाजे खटखटाना शुरु किया , लोगों से मिलना शुरु किया।जो दूतावास के कार्य से मेरा समय बचता था , मैं लोगों के मध्य जाकर , उन्हें टटोलना आरम्भ किया। सामग्री एकत्रित किया। सूरीनाम के लोगों ने जो कुछ शौकिया वश थोडा बहुत लिखकर रखा था उसे इकटठा किया , उसे सम्पादित किया। बडी समस्या वह थी कि उन लोगों ने जो भी लिखा था वह रोमन में लिखा था। और जिस सरनामी भाषा के बारे में अभी बताया उसे वे देवनागरी में नहीं लिखते , बल्कि रोमन स्क्रीप्ट में लिखते हैं। जब वे हिन्दुस्तान से ले जाए गए वे अशिक्षित किसान मजदूर थे , लिखना तो जानते नहीं थे। पढे- लिखे थे नहीं। जब वे उस देश में परस्पर बोलते थे तो जो डचेस लोग थे, जो मजदूर के रूप में उन्हे ले गए थे तब जब भारतीय मजदूर परस्पर बातें करते थे तो ये रोमन में ही लिख लेते थे , अपनी समझ के लिए उसके बाद किसी विशेषज्ञ से पूछ करके कि किसान मजदूर जो बोल रहे हैं उसका अर्थ अपनी भाषा में लिख लेते थे। उस रोमन सामग्री को मैने रोमन से देवनागरी किया।जो दालेक्ट थी उसे भी मैने थोडा सुधारा। जिससे प्रस्तुत करने में आसानी हो सके और वो किताबें हमने तैयार कीं और उसके बाद में तीसरा हिन्दी विश्वसम्मेलन हमने सूरीनाम में आयोजित करवाया। और उसमे मैने अप्ने तीन उन किताबों को जो मैने अप्ने अथक परिश्रम और व्यक्तिगत धन लगाकर प्रकाशित कराया था उसका लोकार्पण कराया । और ये पहली बार सूरीनाम के लोगों ने अपने लिखे हुये को देवनागरी में प्रकाशित होते हुये देखा। उनकी आंखें भर आयी थीं , गदगद हो उठे थे। आते वक्त मैने उन सबका और

उन्होने मेरा आभार व्यक्त किया मैने उन्हें समझाया कि जब आपने हिन्दी भाषा को अपनाया है बोलने के लिए अब तक तो अब लेखन भी अपनाइये। देवनागरी का प्रयोग कीजिए। इस प्रकार मुझसे जो बन सका मैने तन, मन , धन समर्पित हो कर किया।